International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 2; Issue 12; December 2015; Page No. 553-555

हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में परिवेशगत विसंगतियों का चित्रण

सुनीता रानी
हिंदी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत।

प्रवस्ताना

देशकाल और परिवेश का कथा-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान होता है। द्विवेदी जी के पहले के दोनों उपन्यास, सप्तम शती और तेरहवी शताब्दी की झांकियों में आधुनक युग की परिस्थितियों का आकलन करते हैं। "पुेनर्नवा" में चतुर्थ शताब्दी का वातावरण प्रस्तुत किया गया है। वैसे उपन्यास, टूटती व्यवस्थाओं और जर्जरित परम्पराओं के परिमार्जन पर प्रकार डालता है। इसके सिवा इससे चतुर्थ शताब्दी के युग पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता।

'बाणभटट की आत्मकथा' में बाणभटट का चरित्र उदात्त एवं आदर्श है। उसकी तेजस्विता निर्भीकता तथा संवेदनशीलता की अलौकिक ऊर्जा से आत्मकथा उदभाषित हो उठी है। सहज मानवीयता से अनुप्राणित्त होकर वह हर दुखी अवस्था पर अपने अंतर का सारा प्रेम, स्नेह और ममत्व को उडेल देता है। बाण ने नारी को कभी हास-मास की पुतली के रूप में नही देखा बल्कि शक्ति स्वरूपा स्त्री के रूप में ग्रहण किया है। वह छोटे राजकुल में वन्दिनी भटिटनी को बीणा बजाते देखता है। वह कहता है ''मैंने इस बार स्वभाविक संकोच छोडकर इस कमनीयता की मूर्ति की ओर देखा। उसको देखकर अत्यंत पतित व्यक्ति के हृदय में भी भक्ति उत्पन्न हुए बिना नही रह सकती। उसके सारे शरीर में स्वच्छ क्रांति प्रवाहित हो रही थी। अत्यंत धवल प्रभा पुंज से उसका शरीर एक प्रकार से ढका हुआ सा जान पडा था। मानों वह स्फटिक गृह में आबद्ध हो या दुग्ध सलिल में निमग्न हो या विमल चीनाशंकु से समावृत्त हो या दपर्ण में प्रतिबिम्बित हो या शरदकालीन मेद्यपुंज में अंतरित चन्द्रकला हो।''[1] बाणभटट के हृदय में भटिटनी के प्रति श्रद्धाभाव है, जिसे वह अत्यंत बाणभटट के प्रति उसका अनुराग प्रेम का नवीन परिवेश प्रस्तुत करता है। जिसका आधार सर्व समपर्ण भाव है। वह जीवन पर्यन्त भटट से प्रेम करती है। अपने पावन प्रेम को छिपाकर अभिनय करती रही है किन्तु उसने भटट और भटिटनी के परस्पर आकर्षक को देखकर कभी भी ईर्ष्या नही की, बदले में दोनो को बढावा ही दिया। इतना ही नही, उन दोनों की सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता मानी। यह उसके मन की उदात्त्ता है उसके निष्काय प्रणय भावना का उदात्तीकरण स्वरूप है जिसे वह अंत तक खण्डित नही होने देती। निपुणिका स्त्री जाति का श्रंगारथी सतीत्व की मर्यादा थी, हमारे जैसी उन्मार्ग गामिनी नारियों की मार्गदर्शिका थी।''[2] चारूस्मिता के ये शब्द निपुणिका के चरित्र की महानता को व्यंजित करते है। जोकि पाठक के हृदय में मर्मस्पर्शी अनुभूति को जाग्रत कर उत्साह को बढाने वाला है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'बाणभटट की आत्मकथा' में तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था की ओर, सातवीं शताब्दी के भारत के राजनैतिक स्थिति का अत्यंत सफलताया चित्रण किया है। 'आत्मकथा' से पता चलता है उस समय की राजनीतिक स्थिति अत्यंत विश्रंखल थी। देश की सीमाएं आक्राताओं से आक्रांत थी। हूणों के आक्रमणो से आर्यावर्त्त की शक्ति छिन्न भिन्न हो रही थी। प्रत्यंत दस्युओं के आक्रमण के प्रतिरोध हेतु जन-जागरण था। गौरिक धारिणी भैरवियों का उदात्त कंठ से गान, हृदयों मे उत्साह की तरंगे उद्वेलित करता है-''आर्यावर्त्त के तरूणो, जीना सीखो, मरना सीखो, इतिहास से सीखना सीखो। आर्यावृत्त नाश के कगार पर खडा है। जवानों, प्रत्यंत दस्यु आ रहे है। राजाओं का भरोसा करना प्रमाद है, राजपुत्रों की सेना का मुंह ताकना कायरता है। आत्मरक्षा का भार किसी एक जाति पर छोडना मूर्खता है। जवानों प्रत्यंत दस्यु आ रहे है। समस्त आर्यावत्त एक है - एक समाज, एक प्राण, एक धर्म, देश रक्षा सभी का समान धर्म है। जवानों प्रत्यंत दस्यु आ रहे है।'' तुम्हें माता के दूध की शपथ है, कुल वंधुओं के सुहाग की शपथ है दुध मुहें बच्चों के दुलार की शपथ है। उठो भेदभाव भूल जाओ।[3] महामाया भी नागरिको के अन्दर उत्साह आशा, विश्वास का संचार करने के उददेश्य से सभा को सम्बोधित करती है जोकि मन को उर्जस्वित करने वाला है। वह समाज मे नारी की दीन हीन दशा के पीछे तत्कालीन राजवंश, सामंतो आदि को मानती है। वह कहती है-''इस उत्तरापथ मे लाख-लाख निरीह बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय क्या नही चल रहा है? अगर देवपुत्र तब मिलिंद का हृदय थोडा भी संवदेनशील होता, तो आज से बहुत पहले उन्हें मुर्च्छित होकर गिर पडना था। क्या निरीह प्रजा की बेटियां उनकी नयन तारा नही हुआ करती? क्या राजा और सेनापति की बेटियां का खो जाना ही संसार की सबसे बडी दुर्घटनाएं है? और आर्य सभासदों मेरी और देखो मैं तुम्हारे देश की लाख-लाख अपमानित, लांछित और अकारण दंडित बेटियों में से एक हूँ! कौन नही जानता कि इस घृणित व्यवसाय के पीछे प्रधान आश्रय सामंतो और राजाओं के अंतःपुर है? आपमें से किसे नही मालूम कि महाराजधिराज की चामर धारिणियाँ और कटंक वाहिनियाँ इसी प्रकार भगाई हुई और खरीदी हुई कन्याएं है? आर्य सभासदों क्या इन कन्याओं के पिता नही थे? क्या वे अपनी माताओं की नयन ताराएं नही थी? क्या उनके माँ-बाप के हृदय में अपनी संतति के प्रति जो स्नेह भावना थी, वह किसी सम्राट की स्नेह भावना से कम थी?''[4]

'चारूचन्द्र लेख में धीर शर्मा मातृभूमि की रक्षा के लिए आततायी के उन्मुलन के लिए नागरिकों का आवह्मन करते है जोकि आत्मबल को बढाने वाला है। वह नागरिकों के अन्दर उत्साह का संचार करते हुए आवह्मन करते है-''वीरों पार्वती क्या महारानी चन्द्रलेखा तुम्हें मनोवांछित विजय का निश्चित उपहार देने आयी है। मैं चंडिका के उन दोनों चरण कमलों की वंदना करता हूँ जो विराट युद्ध में पराजित भयंकर असुरों के कटे हुए मुंण्डों के सरोवर में अपनी ही नख किरणों के मृणाल पर कमल की भांति खेल रहे थे और जिन पर देवी के चरणों के चंचल नूपूर इस प्रकार झंकार कर रहे थे मानों भौरो की टोली गुजार कर रही हो। वीरो! मरण महोत्सव का ऐसा सुन्दर पर्व फिर नही

मिलेगा। पवित्र आर्य भूमि आज विदेशी दस्युओं के आक्रमण से हत दर्प होकर कराह रही है। मातृभूमि के गौरव की रक्षा का भार तुम्हारे कंधे पर है।''[५] चारूचन्द्र लेख में शतक के बाद के भारत का चित्त प्रस्तुत किया गया है। समाज विघटित हो गया था। उस दशा में हम अव्यवस्थित दशा में हम पराजित और पराधीन होते जा रहे थे। सम्राट हषर्वधन द्वारा बनायी गयी सामाजिक, राजनीतिक, एकता विछिन्न हो गयी थी। बौद्धों में अनेक विकृतियाँ आ चुकी थी। तत्कालीन भारत वर्ष मिथ्याडम्बरों, धार्मिक अंधविश्वासों और अतिचारों की कुहेलिका में आकंठ निमज्जित था। सामान्य जन समूह सिद्धियों से प्रभावित अभिभूत था। कर्म पर से लोगों का विश्वास उठ गया था। तंत्र मंत्र के माध्यम से सिद्धि प्राप्ति की भावना बलवती हो उठी थी। निठल्ले चमत्कार प्राण ढोंगी साधुओं को जनता ने अपना नेता मान लिया था भिसिलपाद चन्द्रलेखा को सिद्धियों की निरर्थकता को बताते हुए मानवता एवं आत्मबल पर जोर देते है। वह मानवता को ही मानव की विशेषता बताते हुए कहते है–''सिद्धियाँ मनुष्य को कुछ विशेष बल नही देती। एक साधारण किसान जिसमें दया माया है, सच झूठ का विवेक है और
बाहर भीतर एकाकार है वह भी बडे से बडे सिद्ध से ऊँचा है। चरित्र बल समस्त शक्तियों का अक्षय भंडार है। जिस साधना से यह महान स्त्रोत सूख जाता है वह व्यर्थ है।''[६] विद्याधर भटट प्रजा में फैली मिथ्या अंधविश्वास, अराजकता की स्थिति को समाप्त करने के लिए प्रजा के साथ–साथ चन्द्रलेखा का भी आह्वान करते है। वह कहते है कि– ''शास्त्र बल से हारना हारना नही है, आत्मबल से हारना ही वास्तविक पराजय है बेटी।[७] चन्द्रलेखा उनकी बात सुनकर उत्साहित होते हुए प्रतिज्ञा करती है आर्य ऐसा ही होगा इस देश में मिथ्या खण्ड अभिमानों को चूर्ण करने के लिए चन्द्रलेखा वज्र के हथौडे का काम करेगी और हतदर्प, हीन–वीर्य पराजित प्रजा के चित्त में इतिहास की मंगलमयी प्रेरणा देने के लिए वह अमृत की तरह झरेगी। आर्य आश्वस्त हो। जब तक विषमता का संकट दूर नही होता, एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आयोजित घिनौने युद्धों का अवसान नही होता, पशु बल की तुलना में आत्मबल की उच्चता प्रकट नही होती, तब तक चन्द्रलेखा को शांति नही मिलेगी।''[८] चन्द्रलेखा का यह कथन उत्साह बढाने वाला है। अमोघ वज्र संस्कृति की समन्वयवादिता एवं सभी कुछ को ग्रहण करने की शक्ति पर भाव विहल हो उठते है–'' ''हे मेरे महान देश की मिटटी शक्ति दो, शक्ति दो, शक्ति दो कि मैं इस देश की आत्मघाती मूढता पर कसकर आघात दे सकूँ, शक्ति दो कि मैं उस महान 'एक' के मंत्र का साधन जुटा सकूँ। कैसी विचित्र शक्ति रही है इस मिटटी में न जाने कितने युगों में बल दृप्त जातियों की कितनी दुर्बर धाराएँ यहाँ आयी है, उनके रक्त रंजित चरणों की छाप अब भी देखने को मिल जाती है पर फिर वे सब 'एक' के महान मंत्र में दीक्षित हो गयी है।''[९] अमोघवज्र का यह विचार मन को ऊर्जास्वित कर भारत की समन्वय साधना पर प्रकाश डालने वाला है जोकि भावगत औदात्य से परिवेष्टित है।

'पुनर्नवा' आचार्य द्विवेदी जी का तीसरा उपन्यास है जिसमें अतीत की एक लम्बी कहानी कथित है और उसमें प्रेम की सहज अथह अनिवार्य रीति को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है। नारी की आन्तरिक सौन्दर्य जो सदैव पुरूष के लिए अमृतधारा है। जिसमें पुरूष की जीवंत शक्ति एंव अमरत्व निहित है। राजसभा मे बैठे हुए देवरात मंजुला का नृत्य देखते है। मंजुला अत्यंत भाव प्रवणता से अपने नृत्य को कर रही थी। द्रुत मंथर गति से अपने भावों को व्यक्त करती मंजुला देवरात को किसी कुशल चित्रकार द्वारा चित्रित कल्पवल्ली के समान लगी। वह उस नृत्य को देखकर अत्यंत उत्साहित होते हुए कहते है–''पूर्वानिल के झोकों से झूमती हुई शताबरी लता के समान उसकी सम्पूर्ण देह वल्लरी ही भावोल्लास की तरंग से लीलायित हो उठी थी। ऐसा लगता था वह छन्दो से ही बनी हो; रागों से ही पल्लवित हुई है तानो से संवारी गयी है और तालों से ही कसी गयी है।''[१०] निश्चय ही मंजुला का चित्रण सहृदय पाठक को भावोत्कर्ष के लोक में ले जाकर उत्साहित करने में समर्थ है। मंजुला देवरात को अपने यहाँ आने का निमंत्रण देती है पर व्यस्तताओं के बीच देवरात उसके घर न जा सके। तभी भीषण महामारी फैली और मंजुला रोग ग्रस्त हो गयी। वह भाव विहल होते हुए कहती है–''कैसे बताऊँ स्वामिन् मंजुला का जीवन कितना तृषित है! तुमने कहा था कि
तेरा देवता तेरे भीतर है। मानती हूँ, अवश्य होगा। पर तुम जो नही समझ सकोगे। वह यह है कि देवता माध्यम खोजता है, ठोस ग्रहणीय माध्यम! साध्वी रमणियाँ पति का माध्यम पा लेती है। वे धन्य है स्पृहणीय है। पर हाय, गणिका का माध्यम नही होता। वह जुगुप्सित भोग के विकट दावानल में झुलसती रहती है। नारी का जीवन किसी एक को सम्पूर्ण रूप से समर्पित होकर ही चरितार्थ होता है।''[११] यहाँ दृष्टव्य है कि मंजुला अपने त्रासदपूर्ण जीवन की विडम्बना को व्यक्त करती है तथा प्रेम से वंचित जीवन सबसे बडा जीवन का अभिशाप होता है। मंजुला की पीडा सहृदय पाठ को भावोत्कर्ष में बहा ले जाने में समर्थ है। उज्जायिनी में जब शार्विलिक के सामने ही एक दण्डधर किसी स्त्री को उठा लाने के लिए घर में घुस गया । तब शार्विलिक इस अनाचार अत्याचार को देखकर क्रोध से तमतमा उठता है और सिंह की भाँति दहाड़ उठता है–''कौन है जो स्त्रियों पर अत्याचार कर रहा है! मैं हूँ शार्विलिक, मेरे सामने यह सब नहीं चल सकता। मैं एक–एक को मसल दूँगा।''[१२] निश्चय ही शार्विलिक की यह गर्वोक्ति हृदय में उत्साह एवं आत्मबल की आबाध तरंगे उठाने वाली है तथा शार्विलिक के उदात्त चरित्र को रेखांकित करती है। 'पुनर्नवा' में आत्मदान और सेवा का प्रतिपादन किया गया है। देवरात की प्रेरणा से मंजुला अपने को त्यागकर और अपने जीवन रस को दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर ही पुनर्नवा बनती है। इस तरह वह हर भटके हुए यात्री के लिए दीपस्तम्भ बनकर आलोक विकीर्ण करती है। चन्द्रमौलि भी यही अनुभव करता है– ''मैं सर्वत्र किसी व्याकुल अभ्यर्थना से खिंच जाता हूँ। पाने की लालसा से नहीं, लुटाने के लोभ से जो पाना नहीं चाहता, वह क्यों व्याकुल हो जाता है, यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। पर व्याकुलता मुझमें है। शाँति क्या होती है, यह मुझे नहीं मालूम आर्य! पर मुझे ऐसा लगता अवश्य है कि सच्चा सुख अपने आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर उपलब्ध माधुर्य रस को लुटा देने में है।''[१३] चन्द्रमौलि के ये भाव लोक कल्याण पर दुखकातरता आदि जैसे मानवीय गुणों से परिपूर्ण हैं जोकि मन को शक्ति एवं दृढ़ता प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि विद्वान लेखक द्विवेदी जी ने आज के देशकाल और परिस्थिति की बड़ी बारीकी से गुप्त युग के चित्र–फलक में मिला दिया हैं। गुप्त युग केवल ऐश्वर्य के कारण स्वर्ण–युग नहीं कहलाता। संस्कृतियों की गिरावट का पुनर्मूल्यांकन और परिष्कार करने के कारण ही गुप्त सम्राट आज भी श्रद्धा भाजन बने हैं। सामाजिक विधि–विधानों में परिवर्तन लोकमत को देखकर किया जाना चाहिए। यह अति आवश्यक तथ्य है। बिना

इसके जन-जीवन में दरारें पड़ने लगती हैं। विचारों और भावनाओं से खुलकर खेलना कदापि हितकर नहीं साबित होता। संयमित जीवन जीने के लिए आत्मनियंत्रण परमावश्यक है। इन्ही तथ्यों को समझानें के लिए गुप्त युग का वातावरण प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. बाणभट्ट की आत्मकथा - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० १२५।
2. बाणभट्ट की आत्मकथा - हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० २२८।
3. वही- पृ० २०३।
4. बाणभट्ट की आत्मकथा - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० १५४।
5. चारूचन्द लेख - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० ७६।
6. चारूचन्द लेख - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० १२१।
7. चारूचन्द लेख - हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ६६।
8. वही- पृ० ६६।
9. वही- पृ० २५६।
10. पुनर्नवा - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० १२।
11. पुनर्नवा - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० ५६।
12. पुनर्नवा - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० १५२।
13. पुनर्नवा - हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० १३०।